Shree Mahimna Stotra

Belongs to Pandit Lassa ku
English Clerk to the
Additional District Magistrate
Kashmir — Srinagar.

[illegible]

29/2/20

श्रीः

श्रीपुष्पदन्तविरचितं

शिवमहिम्नः स्तोत्रम् ।

पण्डितरामेश्वरभट्टकृतया

सान्वयभाषाटीकया समन्वितम् ।

इदं च

मुम्बय्यां

पांडुरंग जावजी

इत्येतैः स्वकीये निर्णयसागरयन्त्रालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

सन १९२२.

कीमत ३ आना.

प्रिन्टरः-रामचंद्र येसु शेडगे.
पब्लिशरः-पांडुरंग जावजी.

नं. २३ कोलभाट लेन,
निर्णयसागर प्रेस, मुंबई.

श्रीशंकरध्यानम् ।

श्रीः ।

भूमिका ।

पाठकगण! यह भूतभावन शंकरके महिम्न स्तोत्रकी भाषाटीका प्रस्तुत है। यह स्तोत्र जैसा दिव्य और मनोहर है वैसाही इसका सब प्रान्तोंमें प्रचार होरहाहै। इसके शिखरिणी छंदोंको पढ़ते २ भक्तजन रोमांचित और गद्गद् कंठ होजाते हैं और उनको जो आनंद आता है उसका तो केवल अनुभवही हो सक्ता है। इसकी रचनाका मूलकारण यह सुनाजाता है कि गंधर्वराज पुष्पदंत एक राजाके प्रमदवनसे शिवजीकी पूजाके लिये नित्य पुष्प तोड़ लाया करते थे। राजाको इस बातकी खोज हुई। उसने–शिवनिर्माल्यके लंघनसे चौरका सब ज्ञान नष्ट होजायगा–इस अभिप्रायसे शिवजीपर चढ़ायेगये पुष्प मार्गमें गिरवा दिये। जब प्रातःकाल पुष्पदंत फूल लेने गये और उन्होंने अनजाने उन पुष्पोंका उल्लंघन किया तब उनकी ज्ञानशक्ति कुंठित होगई जिससे वे तुरंत समझ गये कि शिवनिर्माल्यलंघनसे यह मेरी दशा हुई है। फिर वे आशुतोष शंकरकी शरण जाकर उनकी स्तुति करने लगे और शंकरकी कृपासे वह पहिलेके समान ज्ञानवान् होगये। यह महिम्न स्तोत्र वही स्तुति है।

इस स्तोत्रके कितनेही श्लोक अर्थगौरव और वेदांतभावसे जकड़े हुए हैं। उनके विषयपर बहुतकुछ लिखा जासक्ताहै और इसके ३२ श्लोकोंका अर्थ विष्णुपक्षमेंभी लगताहै परंतु टीका बढ़ जानेके कारण वह सर्वसाधारण के कामकी नहीं होती ऐसा विचार कर अन्वयके अनुसार ऐसा सीधा २ अर्थ लिखदेनाही उचित समझा गया कि जिसमें कोई कठिनताभी न रह जाय, सब भावभी आजाय और सब समझ सकें। आशा है कि शिवभक्त इसका सरल अर्थ पढ़कर प्रसन्न होंगे। एक दो संस्कृत टीकामेंभी देखनेमें आईं। श्रीमधुसूदनसरस्वतीकृत शिवविष्णुपरा संस्कृत टीका बहुत अच्छी और विस्तृत है इसमें शिव विष्णु दोनों पक्षोंका प्रतिपादन है। टीकाकारोंने ३२ श्लोकोंपरही टीका करके फलस्तुतिको छोड़ दिया है। उसमें दो कारण

दीखते हैं—या तो उन्होंने फलस्तुतिके श्लोकोंको क्षेपक समझा या सरल। यदि पुष्पदन्ताचार्यने ३२ श्लोकही बनाये तोभी फलस्तुतिकी आवश्यकता थी क्योंकि विना उसके स्तोत्रमें पाठकोंकी रुचि नहीं होती। उसके दो तीन श्लोकोंसे उनके पुष्पदंतरचित होनेमें मुझेभी संदेह होताहै क्योंकि "सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानः" "श्रीपुष्पदंतमुखपंकजनिर्गतेन" इन पदोंमें आत्मश्लाघा स्पष्ट झलकती है।

मैंने अपनी बाल्यावस्थामें शिवजीके एक परमभक्त षट्शास्त्रीद्वारा कथित यह भी सुना था कि जब पुष्पदंत महिम्नस्तोत्रके ३२ श्लोक बनाकर शिवजीको सुना चुके तब इनको अपने मनमें अपनी कृतिका बड़ा अभिमान हुआ। घट २ निवासी शिवजी यह जानकर खूब खिलखिला कर हँसे। उस समय पुष्पदंताचार्यको शिवजीके ३२ दाँतोंपर अपने बनाये ३२ श्लोक लिखे दीखपड़े कि जिससे उनका सब अभिमान जातारहा और उन्होंने शिवजीसे अपनी अज्ञानताकी क्षमा मांगकर अपनेको धन्य माना।

यह भाषाटीका श्रीयुत पांडुरंग जावजी महाशयकी आज्ञासे बनाई गई है इसलिये इसका संपूर्ण अधिकार उनके आधीन करता हूं। चन्द्रशेखर भगवान् उनको दीर्घायु और सुखसंपत्तियुक्त करें।

अंतमें प्रार्थना है कि यह टीका केवल भाषा जाननेवाले शिवभक्तोंके लिये रचीगई है। जहां कहीं इसमें मेरे प्रमाददोषसे अथवा यंत्रदोषसे कुछ रहगयाहो उसे पाठकजन क्षमा करैं—शुभम्।

फाल्गुन शुक्ला १० बुधे संवत् १९७८।

शिवपदकमलानुरागी

रामेश्वरभट्ट,

आगरा.

॥ श्रीः ॥

शिवमहिम्नः स्तोत्रम्

सान्वयभाषाटीकासहितम् ।

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ॥
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येषः स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे हर! ते महिम्नः परं पारं अविदुषः स्तुतिः यदि असदृशी (स्यात्) तत् (तर्हि किं चित्रं कुतः) ब्रह्मादीनां अपि गिरः त्वयि अवसन्नाः (अयोग्याः)। अथ स्वमतिपरिणामावधि गृणन् सर्वः अवाच्यः (तर्हि अस्मिन्) स्तोत्रे मम अपि एषः परिकरः निरपवादः। इत्यन्वयः ॥ १ ॥

अर्थ—हे शंकर! आपकी महिमाके परले पारको नहीं जाननेवाले पुरुषसे (अर्थात् मुझसे) कीगई स्तुति यदि आपके योग्य न हो तो (आश्चर्यही क्या है क्योंकि) ब्रह्मा आदिसे कीगई भी स्तुति आपके अयोग्य है; (अर्थात् ब्रह्मा आदि देवताओंकी भी तो वाणी आपकी स्तुति करते २ थक जाती है इस लिये स्तुतिका अधिकार तो न उनको है और न मुझे है) और जो अपनी २ बुद्धिके अनुसार स्तुति करनेवाले सब लोग

निर्दोष हैं तो (इस स्तुति करनेमें) मेरा भी यह उद्योग निंदाके योग्य नहीं है (अर्थात् जैसी हो सके मुझे भी इसके करनेका अधिकार है) ॥ १ ॥

अतीतः पंथानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ॥
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥ २ ॥

अन्वयः–तव महिमा वाङ्मनसयोः पन्थानं अतीतः च यं श्रुतिः अपि अतद्व्यावृत्त्या चकितं अभिधत्ते। सः कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः। अर्वाचीने पदे तु कस्य मनः न पतति कस्य वचः न पतति? (अपि तु पतति एव) ॥ २ ॥

अर्थ–हे भगवन्! आपकी महिमा, वाणी और मनके मार्गसे परे है (अर्थात् न उसे वाणी कह सक्ती है, न वहांतक मनकीही पहुँच है) और जिस (महिमा)को वेद भी अनिश्चित रूपसे डरता २ प्रतिपादन करता है (अर्थात् आपके निर्गुण सगुण रूपके विषयमें कोई पक्की वात नहीं कहता फिर) उसका कौन वर्णन कर सक्ता है (अर्थात् कोई नहीं। क्योंकि जो आपको सगुण मानें तो) आपके कितने प्रकारके गुण हैं (यह कोई नहीं जान सक्ता) और (जो आपको निर्गुण मानें तो) आप किसके विषय हैं (अर्थात् आपका पता नहीं लगता) परंतु (आप बूढ़े बैलपर सवार, आधे अंगमें पार्वतीजीको लिये, मुंड-माला पहिरें, भूत प्रेतोंको साथ लिये मुर्दघटोंमें बिहार करते फिरते हैं इत्यादि) आपके (इस) नवीन भेसपर किसका मन

नहीं चलता और किसकी वाणी उसका वर्णन करना नहीं चाहती (अर्थात् सबकी चाहती है इस लिये मैं भी कुछ वर्णन करता हूं) ॥ २ ॥

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन्किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ॥
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे ब्रह्मन् ! परमं अमृतं मधुस्फीता वाचः निर्मितवतः तव सुरगुरोः अपि वाक् किं विस्मयपदं । (यदि एवं तर्हि किमर्थं स्तुतौ प्रवर्तसे अत आह) हे पुरमथन ! (अहं) भवतः गुणकथनपुण्येन (आत्मीयां) एतां वाणीं पुनामि इति अस्मिन् अर्थे मम बुद्धिः व्यवसिता ॥ ३ ॥

अर्थ—हे प्रभो ! आप (स्वयं) परम अमृत सरीखी, मधुके समान मधुर वाणी (अर्थात् वेदों)के रचनेवाले हो, आपको बृहस्पतिजीकी वाणीसे भी क्या आश्चर्य हो सकता है ? (अर्थात् बृहस्पतिजी भी आपकी कोई ऐसी स्तुति नहीं करसक्ते जिससे आपको अचंभा हो, फिर मेरा तो कहनाही क्या है । जो आप कहैं कि यदि ऐसा है तो तू क्यों स्तुति करता है ! तहां कहता हूं कि) हे त्रिपुरांतक ! (मैं तो) आपके गुण—वर्णनरूपी पुण्यसे (अपनी) इस वाणीको पवित्र करता हूं इसी कारण इस विषयमें (अर्थात् आपकी स्तुति करनेको) मेरी बुद्धि तयार हुई है ॥ ३ ॥

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ॥
अभव्यानामस्मिन्वरद रमणीयामरमणीं
विहंतुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ॥ ४ ॥

अन्वयः–हे वरद ! जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्, त्रयीवस्तु, गुणभिन्नासु तिसृषु तनुषु व्यस्तं यत् तव ऐश्वर्यं तत् विहन्तुं इह एके जडधियः, अभव्यानां रमणीयां (तथा) अस्मिन् (सर्वज्ञादिगुणविशिष्टे तवैश्वर्ये शुद्धमतीनां) अरमणीं व्याक्रोशीं विदधते ॥ ४ ॥

अर्थ–हे वर देनेवाले ! जगत्को उत्पन्न, पालन और नाश करनेवाला, तीनों वेदोंका सार, तथा रज, सत्व, तम तीन गुणोंसे (ब्रह्मा, विष्णु, महेशके) तीन शरीरोंमें प्रकट हुआ जो तुह्मारा प्रताप है उसका खंडन करनेके लिये इस (संसार) में कितनेही बुद्धिहीन (मीमांसक), पापियोंको तो अच्छी लगनेवाली और इस (सर्वज्ञत्व आदि गुणोंसे युक्त ऐश्वर्यके वियष) में (पंडितोंको) बुरी लगनेवाली निन्दाको करते हैं ॥४॥

किमीहः किंकायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ॥
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ॥ ५ ॥

अन्वयः–स धाता किमीहः (सन्) किं कायः (सन्) किमुपायः (सन्) किमाधारः (सन्) च किमुपादानः (सन्)

त्रिभुवनं सृजति खलु । इति अयं कुतर्कः अतर्क्यैश्वर्ये त्वयि अनवसरदुस्थः (अपि) कांश्चित् हतधियः जगतः मोहाय मुखरयति ॥ ५ ॥

(मूर्ख क्या निन्दा करते हैं सोही कहते हैं)

अर्थ—वह ईश्वर किस चेष्टासे, किस शरीरसे, किस उपायसे, कहां बैठकर, और किस सामानसे तीनों लोकोंको निश्चय करके रचता है। यह कुतर्क (अर्थात् वृथा मीन मेख निकालना) तर्कनारहित ऐश्वर्यवाले आपके विषयमें विलकुलही विना औसरका है (फिर भी वह) कितनेही मूर्खोंसे दुनियाको वहकानेके लिये ऐसा कह लाता है (अर्थात् मूर्ख लोग आपके विषयमें कुतर्क कर दुनियाको वहकाये विन नहीं रहते) ॥ ५ ॥

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति ॥
अनीशो वा कुर्याद्भुवनजनने कः परिकरो
यतो मंदास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे अमरवर ! अवयववन्तः अपि (इमे) लोकाः किं अजन्मानः (सन्ति अपि तु न) किं भवविधिः (सृष्टिविधानं) जगतां अधिष्ठातारं अनादृत्य (अनपेक्ष्य) भवति (अपि तु न) वा अनीशः (कश्चित् ईश्वरं विनैव जगत्) कुर्यात् (तदा तस्य) भुवनजनने कः परिकरः यतः इमे मन्दाः त्वां प्रति संशेरते ॥ ६ ॥

अर्थ–हे देवोंमें श्रेष्ठ! अंगोंसहित (ये चौदह) लोक[1] क्या जन्मरहित हैं (अर्थात् नहीं हैं) क्या सृष्टिकी रचना[2] आप (जगत्के कर्ता) विना हो सक्ती है (अर्थात् नहीं होसक्ती) अथवा ईश्वरको छोड़ कोई (दूसरा ईश्वरके विना ही जगत्को) उत्पन्न करता है (तो उसके पास) लोकोंके उत्पन्न करनेके लिये क्या सामग्री है? तो भी ये मूर्ख आपके विषयमें संदेह करते हैं (सो भलेंही किया करैं। पण्डित तो जानते हैं कि न तो लोक अजन्मा हैं और न ईश्वरके विना सृष्टिकी रचना हो सक्ती है और न ईश्वरको छोड़ अन्य कोई लोकोंको उत्पन्न करता है) ॥ ६ ॥

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ॥
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥ ७ ॥

अन्वयः–(हे भगवन्!) त्रयी, साङ्ख्यं, योगः, पशुपतिमतं, वैष्णवम् (मतं) इति प्रस्थाने (मार्गे) प्रभिन्ने (सति) इदं परं,

---

१ चौदह लोक ये हैं—तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, पाताल, भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक ॥

२ इसी विषयका एक श्लोक स्तुतिकुसुमांजलिमें लिखा है 'यथोपादानं मृत्तदनु सहकारीह लगुडो, जलं चक्रं सूत्रं तदनु जडवर्गोऽयमखिलः। न यत्नं कौलालं प्रभवति विना कुंभघटने, तथाधिष्ठातारं न भवति विना त्वां भवविधिः। अर्थात् मट्टी, लकड़ी, जल, चाक तथा डोरी–इन जड़ पदार्थोंका समूह जैसे कुम्हारके यत्न विना घड़ा नहीं बना सक्ता उसी प्रकार तुम्हारे–अधिष्ठाताके-विना सृष्टिकी रचना नहीं होती।

च अदः पथ्यं (ग्राह्यं) इति रुचीनां वैचित्र्यात् (भिन्नत्वात्) ऋजुकुटिलनानापथजुषां नृणां एकः त्वं (एव) गम्यः असि (कथं यथा) पयसां अर्णवः इव ॥ ७ ॥

अर्थ–(हे भगवन्!) तीनों वेद, सांख्य (कपिलमुनिकृत जिसमें प्रकृति पुरुषका वर्णन है), योग (जिसमें योगाभ्यास है), शैवसिद्धान्त (रुद्रयामल तंत्र आदि), वैष्णवमत (नारद-पंचरात्र आदि) इस भांति अलग २ मार्ग (मत) हैं (और प्रत्येक मतवाले अपनी २ ढपली अपना २ राग आलापते हैं। कोई कहता है) यह (हमारा मत) अच्छा है और (कोई कहता है) यह (हमारा मत) मानने योग्य है इस प्रकार भाँति २ की रुचियाँ होनेके कारण सीधे और उलटे अनेक मार्ग वा मतसे जानेवाले मनुष्योंको (अंतमें केवल) एक तुमही मिल जाते हो। जैसे (गंगा आदि नदियोंके) जल टेढ़े सीधे अनेक मार्गसे होते हुए (अंतमें) समुद्रसे जा मिलते हैं (भाव–चाहै जिस देवताको मानों और पूजो पर अंत शिवधाममें पहुंच जाओगे) ॥७॥

(अव शिवजीका परमयोगी होना दरसाते हैं)

महोक्षः खट्वांगं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद तंत्रोपकरणम् ॥
सुरास्तां तामृद्धिं विदधति भवद्भ्रूप्रणिहितां
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥ ८ ॥

अन्वयः–हे वरद ! महोक्षः, खट्वांगं, परशुः, अजिनं, भस्म, फणिनः । च कपालं इति इयत् तव तन्त्रोपकरणं (गृहसामग्री

अस्ति)। (परंतु) सुराः भवभ्रूप्रणिहितां (भ्रूक्षेपमात्रेण नितरां दत्तां) तां तां ऋद्धिं विदधति (धारयन्ति । यदि एवं तर्हि कथं स्वयं न भुंक्ते । न चैवं वाच्यं) हि (यस्मात्) विषय मृगतृष्णा स्वात्मारामं (योगिनं) न भ्रमयति ॥ ८ ॥

अर्थ–हे वरदायक ! बूढ़ा बैल, खट्वांग, (दंडके ऊपर ब्रह्मकपाल), कुठार, (व्याघ्र) चर्म, भवूत, सर्प और कपाल यह इतनी ही आपके पास कुटुंब पालनकी सामग्री है परंतु देवता आपकी भोंहके फेरनेसे पाई हुई भांति २ की संपदायें भोगते हैं (यदि ऐसा है तो शिवजी स्वयं क्यों नहीं भोगते) इसका कारण यह है कि विषयरूपी मृगतृष्णा अपने (चिदानंदघन) रूपमें रमण करनेवाले (योगीराज)को नहीं डिगाती है ॥ ८ ॥

(अव शिवजीका निर्गुण और सगुणरूप कहते हैं)

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ॥
समस्तेऽप्येतस्मिन्पुरमथन तैर्विस्मित इव
स्तुवञ्जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ॥ ९ ॥

अन्वयः–हे पुरमथन ! कश्चित् (सांख्यपातंजलमतानुसारी) इदं सर्वं (जगत्) ध्रुवं गदति, अपरः (बौद्धः) तु इदं सकलं अध्रुवं गदति, परः (तार्किकः) ध्रौव्याध्रौव्ये गदति । एतस्मिन् समस्ते अपि जगति व्यस्तविषये (सति) तैः (वादिभिः) विस्मित इव त्वां स्तुवन् जिह्रेमि । ननु (अहो) खलु (निश्चयेन) मुखरता धृष्टा न (अपि तु धृष्टैव) ॥ ९ ॥

अर्थ—हे त्रिपुरनाशक ! कोई (सांख्य पातंजल मतानुसारी) इस सब (जगत्) को सच्चा कहता है। कोई (बौद्ध) इसे झूठा कहता है और कोई (तार्किक) इसे सच्चा और झूठा दोनों कहता है। इस सब संसारके विषयमें कोई भी बात ठीक न होनेसे (मैं) उन (तरह २ की बातें मारनेवालों) के कारण ऐसा भौचक्का होगयाहूं (अथवा ऐसे चक्करमें पड़ गयाहूं) कि आपकी स्तुति करता हुआ लजाताहूं (भाव—जब बड़े बड़ोंका यह हाल है तो मैं कैसे स्तुति करूं। जो कहो कि यह बात है तो क्यों स्तुति करता है तहां कहते हैं कि) आहा ! निश्चय करके वाचालता क्या धृष्ट (ढीट) नहीं होती (अर्थात् अवश्य होती है। भाव—बक २ करनेकी जो टेव पड़ जाती है वह नहीं छूटती—यही दशा मेरी भी है) ॥ ९ ॥

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरिंचो हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमनिलस्कंधवपुषः ॥
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत्[1]
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ॥१०॥

अन्वयः—हे गिरिश ! अनिलस्कन्धवपुषः तव यत् ऐश्वर्यं (अस्ति तत्) यत्नात् परिच्छेत्तुं उपरि विरिंचः अधः हरिः यातौ (किन्तु) अनलं (न समर्थौ बभूवतुः)। ततः (त्वया) भक्तिश्रद्धा-भरगुरुगृणद्भ्यां ताभ्यां स्वयं तस्थे। (यतः) तव अनुवृत्तिः किं न फलति (अपि तु फलति एव) ॥ १० ॥

---

१ एक बहुत पुरानी पुस्तकमें इस श्लोकमें दियेगये "गिरिशयत्" के स्थानमें गिरिशय पाठ दिया है—कारण दोवार "यत्" शब्द आनेसे पुनरुक्ति दोष आता है।

अर्थ–हे गिरीश ! तेजःपुंज शरीरवाले आपका जो ऐश्वर्य है उसको यत्नपूर्वक निश्चय करनेके लिये ऊपर ब्रह्मा और नीचे विष्णु गये पर निश्चय न करसके। फिर बड़ी भारी भक्तिश्रद्धासे आपकी स्तुति करने लगे तो दोनोंको आपने प्रत्यक्ष दर्शन दिया। इसलिये आपकी सेवा क्या फल नहीं देती ? (अर्थात् सब फल देतीही है) ॥ १० ॥

अयत्नादासाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकंडूपरवशान् ॥
शिरःपद्मश्रेणीरचितचरणांभोरुहबलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम् ॥११॥

अन्वयः–हे त्रिपुरहर ! दशास्यः त्रिभुवनं अयत्नात् अवैरिव्यतिकरं आसाद्य रणकंडूपरवशान् बाहून् अभृत (तत्) इदं शिरःपद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः स्थिरायाः त्वद्भक्तेः विस्फूर्जितम् ॥ ११ ॥

अर्थ–हे त्रिपुरांतक ! रावण, जिस त्रिभुवनको सहजहीमें वैरियोंके उपद्रवसे रहित पाकर संग्रामकी खुजलीकी चुलबुलाहटवाली अपनी भुजाओंको जो धारण करता रहा (क्योंकि कोई योद्धा उसके सामने युद्ध करने नहीं आया) सो यह मस्तकरूपी कमलोंकी माला रच २ कर चरणकमलोंमें भेट करनेवाली आपकी अचल भक्तिका प्रभाव था ॥ ११ ॥

रावणने शिवजीकी अवज्ञा करी उसका फल कहते हैं ।

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं
बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ॥

अलभ्या पातालेऽप्यलसचलितांगुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद्ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः ॥१२॥

अन्वयः–(हे भगवन् !) त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं त्वदधिवसतौ कैलासे अपि, बलात् विक्रमयतः अमुष्य (रावणस्य), त्वयि अलसचलितांगुष्ठशिरसि (सति) पाताले अपि, प्रतिष्ठा अलभ्या आसीत् । खलः उपचितः (सन्) ध्रुवं मुह्यति ॥१२॥

अर्थ–आपकी सेवासे बलपाई हुई अपनी बाहुओंको आपके निवासस्थान कैलासकी ओर बलपूर्वक चलानेवाले उस (रावण) को, आपके जरासीही अँगूठेकी नोंक दबादेने पर, पातालमेंभी प्रतिष्ठा[1] नहीं मिली । दुष्ट संपत्ति पाकर बौरा जाता है यह सत्यही है ॥ १२ ॥

---

१ जिस समय शिवजीकी कृपासे रावणको १० शिर और २० भुजायें मिलगई सोही वह बोखलागया और अपनी भुजाओंकी परीक्षा करनेलगा । बैठें ठालें एकदिन इसने कैलासको उठानेके लिये उसकी जड़में अपना हाथ जमाया कि जिससे कैलास डिगमिगानेलगा और पार्वतीजीका जी घबरानेलगा । उधर शिवजीके ध्यानमें भी भंग पड़नेलगी । अंतर्यामी शिवजीने रावणकी दुष्टता समझ अपने पैरके अंगूठेकी नोंक दबादी कि जिससे रावणके हाथकी अँगुलियां दबगइँ और वह फूट २ कर रोनेलगा । इसकी यह दशा देख पातालवासी हँसने लगे और इसे धिक्कार देनेलगे कि तुझे लाज नहीं आती । यदि तेरी भुजाओंमें बल नहीं था तो तूने कैलाशसे क्यों हाथ लगाया । आज तेरी प्रतिष्ठा धूलमें मिल गई । उधर जब रावणके अनेक उपाय करनेपर भी हाथ नहीं निकला तो उसने रोते २ शिवतांडव स्तोत्रसे शिवजीकी स्तुति करी । उस स्तुतिकी विलक्षण कवितासे आशुतोष शिवजीने प्रसन्नहो अपना अँगूठा हटालिया कि जिससे उसका हाथ निकल आया और इसी दिनसे शिवजीने उसका नाम रावण (अर्थात् रोनेवाला) रख दिया ।

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयत्रिभुवनः ॥
न तच्चित्रं तस्मिन्वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्न कस्या उन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे वरद ! परिजनविधेयत्रिभुवनः बाणः सुत्राम्णः परमोच्चैः अपि सतीं ऋद्धिं यत् अधः चक्रे तत् त्वच्चरणयोः वरिवसितरि तस्मिन् चित्रं न । त्वयि शिरसः अवनतिः कस्य उन्नत्यै न भवति अपि तु (सर्वस्य भवति) ॥ १३ ॥

अर्थ—हे वरदायक ! सेवकके समान त्रिलोकीको वश करनेवाले बाणासुरने इन्द्रकी बड़ी भारी संपत्तिकोभी जो (अपने वैभवसे) नीचा दिखाया सो उस आपके चरणोंके सेवकके लिये विचित्र बात नहीं है । आपको मस्तक नवाना किसकी उन्नतिका साधन नहीं होता (अर्थात् सबको ऐश्वर्य देता है) ॥ १३ ॥

अकांडब्रह्मांडक्षयचकितदेवासुरकृपा-
विधेयस्याऽसीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः ॥
स कल्माषः कंठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभंगव्यसनिनः ॥१४॥

अन्वयः—हे त्रिनयन ! अकांडब्रह्मांडक्षयचकितदेवासुरकृपाविधेयस्य विषं संहृतवतः तव कंठे यः कल्माषः आसीत् सः श्रियं न कुरुते (इति) न (अपि तु कुरुते एव) अहो ? भुवनभयभंगव्यसनिनः विकारः अपि श्लाघ्यः (भवति) ॥ १४ ॥

अर्थ–एकाएक ब्रह्मांडके नाशसे (अर्थात् महाप्रलय होनेसे) घबराये हुए देवता और असुरोंपर कृपा करके विषपीनेवाले आपके कंठमें जो नीलापन होगया वह शोभायमान नहीं लगता हो यह बात नहीं है (अर्थात् शोभायमान लगताही है)। आश्चर्य है कि लोकोंके भयको दूर करनेवाले आपका यह विकार-भी बड़ाईके योग्य है ॥ १४ ॥

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः ॥
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्
स्मरः स्मर्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिभवः॥१५॥

अन्वयः–हे ईश ! यस्य (कामस्य) नित्यं जयिनः विशिखाः सदेवासुरनरे जगति असिद्धार्थाः (सन्तः) क्वचित् अपि नैव निवर्तन्ते सः स्मरः त्वां इतरसुरसाधारणं पश्यन् स्मर्तव्यात्मा अभूत् । हि वशिषु परिभवः पथ्यः न (भवति) ॥ १५ ॥

अर्थ–हे शिवजी ! जिस (कामदेव)के सदाजयपानेवाले बाण, देवता असुर और मनुष्योंसे भरे संसारमें अपना काम किये विना कभी नहीं लौटतेहैं वह कामदेव आपको दूसरे देवताओंके समान देखता हुआ भस्म होगया (सो यह योग्यही था क्योंकि) यह निश्चय है कि जितेन्द्रियोंका अनादर करना हितकारी नहीं होता ॥ १५ ॥

मही पादाघाताद्व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ॥

मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता॥ १६ ॥

अन्वयः–(हे भगवन् ! यदा) त्वं जगद्रक्षायै नटसि (तदा) मही पादाघातात् सहसा संशयपदं व्रजति । विष्णोः पदं (आकाशं) भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणं (भवति) अनिभृतजटाताडिततटा द्यौः मुहुः दौस्थ्यं याति । ननु (विभोः) विभुता वामा एव ॥ १६ ॥

अर्थ–(हे भगवन्! जब) तुम जगत्की रक्षाके लिये (तांडव) नृत्य करते हो (तब) पृथ्वी तुह्मारे पैरोंकी ठोकरोंसे एक साथ संदेहमें पड़ जाती है (कि यह क्या हुआ कहीं मैं पातालमें न धस जाऊं) आकाशमें घुमाये हुए भुजारूपी मुद्गरोंसे जिसमें ग्रहोंका समूह क्लेशित होता है ऐसा आकाश संदेहमें पड़ जाता है (अर्थात् कहीं सब ग्रह नक्षत्र न गिर पडें) और खुलीहुई जटाओंके झटकेसे जिसकी हदें बार २ दुखी होती हैं ऐसा स्वर्गभी संशयमें पड़ता है (कि यह क्या आपत्ति आई) कहीं देवता आदि पृथ्वीपर न जा गिरें । (प्रभुकी) प्रभुता सचमुच उलटी २ है (क्योंकि आप नाचते तो रक्षाके लिये हैं पर तीनों लोकोंमें रक्षाको छोड़ उलटा दुःख होता है परंतु इसमें आश्चर्यही क्या है । जब जरासे राजाकी सवारी निकलती है तब कोई खुँदता है कोई गिरता है इत्यादि अनेक उपद्रव होते हैं फिर आप तो परमेश्वर ठहरे आपके नृत्यमें जो हो सो थोड़ा) ॥ १६ ॥

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघु दृष्टः शिरसि ते ॥

जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः ॥ १७ ॥

अन्वयः–वियद्व्यापी, तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः, यः वारांप्रवाहः ते शिरसि पृषतलघु दृष्टः, तेन जलधिवलयं जगत् द्वीपाकारं कृतं । हे धृतमहिम ! इति अनेन एव तव दिव्यं वपुः उन्नेयम् ॥ १७ ॥

अर्थ–हे भगवन् ! आकाशमें फैलाहुआ और (भीतर) तारोंकी (स्वेत) झांई पड़नेसे जिसके फेनोंकी शोभा एकसा रंग होनेसे बढ़ रही है ऐसा जो (गंगारूप) जलोंका प्रवाह आपके शिरपर बूंदसे भी बहुत छोटा दीखता है उसी (जलके प्रवाह) ने समुद्रसे घिरेहुए जगत्को टापूके आकारका बना दिया है सो हे महिमशालिन् ! केवल इसीसेही आपके दिव्य शरीरका अनुमान किया जासक्ता है (भाव–जो आकाशगंगा आकाशभरमें व्याप्त थी वही जब शिवजीने मस्तकपर लीनी तो छोटीसी बूंदके समान दीखने लगी । फिर मस्तकसे जो जलका प्रवाह गंगारूप होकर निकला उसीमेंसे सातों समुद्र भरे जिससे जगत् टापूके समान हो गया । उसीमेंसे भोगवती नदी पातालमें व्याप्त हुई इससे बढ़कर शिवजीके शरीरके परिमाणका प्रमाण हो सक्ता है कि कितना है ॥ १७ ॥

रथः क्षोणी यंता शतधृतिरगेंद्रो धनुरथो
रथांगे चंद्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति ॥
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडंबरविधि-
र्विधेयैः क्रीडंत्यो न खलु परतंत्राः प्रभुधियः ॥ १८ ॥

अन्वयः–हे देव ! त्रिपुरतृणं दिधक्षोः ते अयं कः आडंबरविधिः । क्षोणी रथः, शतधृतिः यन्ता, अगेन्द्रः धनुः, चन्द्रार्कौ रथाङ्गे, अथ रथचरणपाणिः शरः इति खलु प्रभुधियः विधेयैः क्रीड़न्त्यः, परतंत्रा न ॥ १८ ॥

अर्थ–तिनकेके समान त्रिपुरासुरको भस्म करनेके लिये आपका यह क्या पाखंड था कि पृथ्वीको रथ बनाया, ब्रह्माको सारथी बनाया, हिमाचलको धनुष बनाया, सूर्यचन्द्रको रथके पहिये बनाया, और हाथमें सुदर्शन चक्र धारणकरनेवाले भगवान्को तीर बनाया (वह तो आपकी दृष्टिमात्रसेही भस्म हो सक्ताथा, नखोंके काटनेके लिये कुठारकी क्या आवश्यकता, परंतु यह बात निश्चय है कि) प्रभुओंकी बुद्धियां अपने अधीन पदार्थोंके साथ खेल किया करती हैं पर किसीके आधीन नहीं होतीं (भाव–बड़ोंके जो मनमें आता है सो करते हैं) ॥ १८ ॥

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ॥
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥ १९ ॥

अन्वयः–हे त्रिपुरहर ! हरिः ते पदयोः साहस्रं कमलबलिं आधाय तस्मिन् (बलौ) एकोने (सति) निजं यत् नेत्रकमलं उदहरत् असौ भक्त्युद्रेकः चक्रवपुषा परिणतिं गतः (सन्) त्रयाणां जगतां रक्षायै जागर्ति ॥ १९ ॥

अर्थ–हे त्रिपुरांतक ! विष्णु भगवान्‌ने (आपका पूजन करते समय आपके) चरणोंमें हजार कमलोंकी भेट चढ़ाई (इधर उनके हजार कमल नित्य चढ़ानेके नियमकी परीक्षा करनेके लिये जब आपने एक कमल छुपा लिया और) उस भेटमें एक कमल कम हो गया तो (विष्णुभगवान्‌ने अपना नियमभंग होता देख) अपने नेत्रकमलको कमलकी जगह जो चढ़ानेके लिये निकाला (और हजार कमलोंकी भेट पूरी करी) यह भक्तिकी विशेषता (सुदर्शन) चक्रका रूप बनकर तीनों लोकोंकी रक्षाके लिये दिनरात सावधान रहती है (भाव–शिवजीने भगवान्‌को परम भक्त देख उन्हें तीनों लोकोंकी रक्षाके लिये सुदर्शन चक्र दे दिया) ॥ १९ ॥

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते ॥
अतस्त्वां संप्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ॥ २० ॥

अन्वयः–(हे शिव !) क्रतौ सुप्ते (सति) क्रतुमतां फलयोगे त्वं जाग्रत् असि । प्रध्वस्तं कर्म पुरुषाराधनं ऋते क्व फलति । अतः त्वां क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं संप्रेक्ष्य श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा जनः कर्मसु दृढपरिकरः (भवति) ॥ २० ॥

अर्थ–(हे शिवजी !) यज्ञके (किसी कारण) बिगड़ जानेपर यज्ञ करनेवालोंको फल देनेमें आप सावधान रहते हो । क्योंकि नष्ट हुआ कर्म, यज्ञपुरुष (परमेश्वर) के आराधनविना

कहीं फलदायक होता है ? (अर्थात् नहीं होता) इसलिये आपको यज्ञोंमें फलदेनेकी जमानत करनेवाला देखकर वेदमें श्रद्धा बांध (अर्थात् वेदमें जो फलस्तुति कही है कि यज्ञकरनेसे अमुक २ अच्छा फल मिलता है उसके पानेकी प्रतीतिकर) मनुष्य (श्रौतस्मार्त) कर्मका आरंभ पक्का होकर करताहै। (भाव यह है कि जैसे कोई धनी किसीको रुपया उधार दे और किसी बड़े आदमीकी जमानत कराले यह समझकर कि यदि ऋणी मर जायगा भाग जायगा अथवा गरीबीके कारण न दे सकेगा तो मैं जामिनसे रुपया वसूल करलूंगा ऐसेही यज्ञके नष्ट होनेपर शिवजी जो जामिन हैं उनसे मैं धनरूपी फल पालूंगा इस अभिप्रायसे धनीरूपी यजमान आपके भरोसे शंकारहित होकर यज्ञ करता है) ॥ २० ॥

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता-
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः ॥
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥ २१ ॥

अन्वयः—हे शरणद ? क्रियादक्षः, तनुभृतां अधीशः दक्षः क्रतुपतिः (यजमानः आसीत्), ऋषीणां आर्त्विज्यं (आसीत्), सुरगणाः सदस्याः (आसन् तथापि) क्रतुफलविधानव्यसनिनः त्वत्तः क्रतुभ्रंशः (जातः) । ध्रुवं श्रद्धाविधुरं मखाः कर्तुः अभिचाराय (भवन्ति) ॥ २१ ॥

अर्थ—हे शरणदाता ! यज्ञकी क्रियामें चतुर (प्रजापति होनेसे) शरीरधारियोंका स्वामी दक्ष यजमान था, (त्रिकालदर्शी वसिष्ठ

आदि) ऋषि जहां यज्ञ करानेवाले थे और (ब्रह्माआदि) देवता जहां सभासद थे (इसप्रकार सबही सामग्री मौजूद थी परंतु एक कसर यही बड़ी भारी थी कि अवज्ञाके कारण आप प्रसन्न नहीं थे) इसलिये स्वभावसेही यज्ञका फल देनेवाले होकरभी आपने उस यज्ञका विध्वंस करदिया सो यह निश्चय है कि (यज्ञका फलदेनेवालेमें) श्रद्धा न होनेसे यज्ञ यजमानको उलटा फल देते हैं ॥ २१ ॥

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा ॥
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं
त्रसंतं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ॥ २२॥

अन्वयः–हे नाथ ? धनुष्पाणेः ते मृगव्याधरभसः रोहिद्भूतां (मृगीजातां) स्वां दुहितरं ऋष्यस्य (मृगस्य) वपुषा प्रसभं (हठेन) रिरमयिषुं (रमणंकर्तुं) गतं, अभिकं (कामुकं) सपत्राकृतं (अतिव्यथितं) दिवं यातं अपि त्रसंतं (भीतं) अमुं प्रजानाथं अद्यापि न त्यजति ॥ २२ ॥

अर्थ–हे नाथ! धनुष धारण करनेवाले आपका आखेटी

---

१ एक दिन ब्रह्माजीकी सभामें विष्णु महेश आदि सब देवता बैठेथे, पीछेसे वहां दक्षभी आए उनको देख सब देवता तो उठ खड़ेहुए परंतु शिवजी और विष्णु भगवान् नहीं उठे । यह देख दक्षने बड़ा बुरा माना और शाप दिया कि आगेसे तुम्हें यज्ञका भाग नहीं मिलैगा । इसी कारण दक्षने अपने यज्ञमें शिवजीको नहीं बुलाया। शिवजीने अपने गण भेजकर उसका यज्ञविध्वंस करा दिया ।

(शिकारी) वेग अथवा आपके बाणका वेग, मृगीका[1] रूप धरनेवाली अपनी पुत्रीके पीछे मृगका शरीर धरकर, उसके साथ हठपूर्वक रमणकरनेकी इच्छासे गयेहुए, कामसे पीड़ित, (और आपका पत्रसहित बाण मानों शरीरमें बिधगया हो इस कारण) अत्यंत पीड़ित और स्वर्गमें पहुंचकर भी भयभीत हुए ऐसे इन ब्रह्माजीको अभीतक नहीं छोड़ता ॥ २२ ॥

स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमह्नाय तृणव-
त्पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि ॥
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरतदेहार्धघटना-
दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः ॥ २३ ॥

अन्वयः—हे पुरमथन हे यमनिरत ! हे वरद ! स्वलावण्याशंसा देवी, धृतधनुषं पुष्पायुधं अह्नाय तृणवत् पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा अपि देहार्धघटनात् यदि त्वां स्त्रैणं अवैति (तर्हि) बत (इति खेदे) अद्धा (निश्चितं) युवतयः मुग्धाः (भवंति) ॥ २३ ॥

---

१ पुराणमें ऐसी कथा प्रसिद्ध है कि ब्रह्माजी अपनी पुत्री संध्याको देखकर कामके वशीभूत हो उसके साथ रमण करनेके लिये उद्यत हुए। संध्याने देखा कि मेरा पिता होकर यह मेरे साथ संभोग किया चाहता है इसलिये लज्जासे उसने मृगीका रूप धारण करलिया। उसको मृगी देख ब्रह्माभी मृगरूप होगये। त्रिलोकीके स्वामी शिवजीने यह दशा देखकर कि प्रजापति और धर्मका प्रवर्तक होकरभी यह ऐसा नीचकर्म करता है सोचाकि मैं इसे इस महा अपराधका दंड दूंगा। यह विचार शिवजीने धनुषपर बाण चढ़ाकर उसके पीछे फेंका। फिर तो ब्रह्माजीने अतिलज्जित और दुखी होकर मृगशिर नक्षत्रका रूप धर लिया और आकाशमें जा बैठे यह देख शिवजीका बाण आर्द्रा नक्षत्रका रूप धरकर आकाशमें उसके पीछे स्थित होगया और अभीतक उसका पीछा नहीं छोड़ता।

अर्थ–हे पुरदैत्यके नाशक! हे महायोगी! हे वरदाता! अपनी सुन्दरताकी प्रशंसा (भाव-अभिमान) करनेवाली पार्वतीजी, धनुष चढ़ायेहुए कामदेवको तुरंत घास फूसकी तरह सामने भस्महुआ देखकरभी जो अर्धांगिनी होनेके कारण आपको कामी (छिनला) जानती हैं तो बड़े खेदकी बात है। सचमुच स्त्रियां भोली होती हैं (भाव–पार्वतीजी यह जानती हैं कि शिवजीने मेरी सुंदरता-पर रीझकर मुझे अर्धांगिनी बनाया है। यह नहीं समझतीं कि शिवजीने यह दया विचार कर अर्धांगमें किया है कि कामको भस्म देखकरभी यह बराबर मेरे लिये तपकर रहीं हैं कहीं ऐसा न हो कि मेरे विरहमें प्राण छोड़ दें) ॥ २३ ॥

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः ॥
अमंगल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथाऽपि स्मर्तॄणां वरद परमं मंगलमसि ॥ २४ ॥

अन्वयः–हे स्मरहर! श्मशानेषु आक्रीड़ा, पिशाचाः सहचराः, चिताभस्म आलेपः, नृकरोटी स्रक् अपि(एषः ते) परिकरः (अस्ति)। हे वरद! तव अखिलं शीलं अमंगल्यं भवतु नाम एव तथापि (त्वं) स्मर्तॄणां परमं मंगलं असि ॥ अथवा तव शीलं अमंगलं भवतु एव तथापि अखिलं (न खिलं फलरहितं अखिलं सर्वत्र सफलं) नाम स्मर्तॄणां त्वं परमं मंगलं असि। नाममात्रं स्मरतां परमं मंगलं असि त्वां स्मरतां तु किमु वाच्यमिति ॥ २४ ॥

अर्थ–हे कामदेवके नाशक! मरघटोंमें खेलतमाशे करते फिरना, भूतोंके साथ रहना, चिताकी भस्म रमाना, नरमुंडोंकी

माला पहिरना निश्चय करके (यह आपकी) सामग्री है। हे वरदेनेवाले ? आपका सब भेष अमंगलीक भलेही हो तोभी आप स्मरण करनेवालोंको परम आनन्द देनेवाले हो (अथवा सर्वत्र फलदायक नाम स्मरण करनेवालोंको आप परम मंगल हो। नाममात्रका यह प्रभाव है तो आपको जपनेवालोंका क्या कहना है) ॥ २४ ॥

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्संगितदृशः ॥
यदालोक्याह्लादं हृद इव निमज्यामृतमये
दधत्यंतस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ॥२५॥

अन्वयः-(हे भगवन् !) आत्तमरुतः यमिनः प्रत्यक् मनः सविधं चित्ते अवधाय अंतः किमपि तत्वं आलोक्य प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्संगितदृशः (संतः) अमृतमये हृदे निमज्य इव यत् आह्लादं दधति तत् भवान् किल ॥ २५ ॥

अर्थ-(हे भगवन् !) प्राणायाम चढ़ानेवाले परमहंस, सब विषयोंसे मनको हटाकर, योगाभ्यासकी रीतिसे आत्मामें लगातेहैं फिर अंतःकरणमें किसी तत्वको (अर्थात् सच्चिदानंदस्वरूपको) देखकर उनके रोंगटे खड़े होजाते हैं और हर्षके कारण उनके नेत्र आँसुओंसे भर जाते हैं (फिर ऐसा भासता है मानों) अमृतकुंडमें गोता लगा रहे हैं और (उस समय) जो आनन्द वे पाते हैं वह तुमही हो (दूसरा कोई नहीं है) ॥ २५ ॥

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ॥

परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह हि यत्त्वं न भवसि ॥२६॥

अन्वयः–(हे भगवन् !) त्वं अर्कः असि, त्वं सोमः असि, त्वं पवनः, त्वं हुतवहः, त्वं आपः, त्वं व्योम, त्वं धरणिः च त्वं आत्मा इति । परिणताः त्वयि एवं परिच्छिन्नां गिरं बिभ्रतु । वयं हि इह यत् त्वं न भवसि तत् तत्वं न विद्मः ॥ २६ ॥

अर्थ–(हे शंभो !) आप सूर्य हो, आप चन्द्र हो, आप पवन हो, आपही अग्नि हो, आपही जल हो, आपही आकाश हो, आपही भूमि हो, और आपही आत्मा हो इसप्रकार आपके स्वरूपोंको जाननेवाले आपके विषयमें ऐसी जुदी २ बातें भलेही कहें पर हम तो संसारमें (जो और) जिसमें तुम नहीं हो उसवस्तुको नहीं जानते (अर्थात् सबमें आपही हो आपकेविना कुछ नहीं है) ॥ २६ ॥

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति ॥
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुंधानमणुभिः
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम् ॥२७॥

अन्वयः–हे शरणद ! त्रयीं तिस्रोवृत्तीः त्रिभुवनं अथो त्रीन् सुरान् अपि त्रिभिः अकाराद्यैः वर्णैः अभिदधत् (पुनः) तीर्ण-विकृति (निर्विकारं) ते तुरीयं धाम अणुभिः ध्वनिभिः अवरुन्धानं (पुनः) समस्तं व्यस्तं (व्याप्तं) ओं इति पदं त्वां गृणाति ॥२७॥

अर्थ–हे शरणदाता ! जिसका अर्थ, ऋक् यजु और साम तीनों

वेद हैं, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीनों अवस्था हैं, भूः भुवः स्वः तीनों लोक हैं और ब्रह्मा विष्णु महेश तीनों देवता हैं ऐसा तीन प्रकारके (अ. उ. म.) वर्णोंको धारण करनेवाला (अर्थात् इन वर्णोंसे बना हुआ) निर्विकार (अर्थात् जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति अवस्थाओंसे परे) और चौथे धाममें (अर्थात् अखंड चैतन्य-स्वरूपमें) मंद २ धुनिसे व्याप्त होनेवाला, सब और प्रत्येक अक्षर (अ. उ. म.)से (ओं) यह पद तुम्हारी स्तुति करता है॥ २७ ॥

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सह महां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ॥
अमुष्मिन्प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि
प्रियायास्मै धाम्ने प्रणिहितनमस्योऽस्मि भवते ॥२८॥

अन्वयः—हे देव ! भवः, शर्वः, रुद्रः पशुपतिः, अथ उग्रः, सह महान् तथा भीमेशानौ इति यत् अभिधानाष्टकम्, अमुष्मिन् प्रत्येकं श्रुतिः अपि प्रविचरति (अहं अपि) अस्मै प्रियाय धाम्ने भवते प्रणिहितनमस्यः अस्मि ॥ २८ ॥

अर्थ—हे देव ! १ भव, २ शर्व, ३ रुद्र, ४ पशुपति, ५ उग्र, ६ महादेव, ७ भीम, और ८ ईशान यह जो आपके आठ नाम हैं इनमेंसे हरएक नामका वेदभी बखान करता है सो मैंभी आपके इस प्यारे तेजोमयस्वरूपको प्रणाम करता हूं ॥ २८ ॥

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः ॥

नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति शर्वाय च नमः ॥ २९ ॥

अन्वयः–हे प्रियदव ! हे स्मरहर ! हे त्रिनयन ! नेदिष्ठाय नमः । दविष्ठाय नमः । क्षोदिष्ठाय नमः । च महिष्ठाय नमः । वर्षिष्ठाय नमः । च यविष्ठाय नमः । सर्वस्मै ते नमः । तत् इदं इति च शर्वाय नमः ॥ २९ ॥

अर्थ–हे वनविहारी ! हे कामदेवके नाशक ! हे त्रिनेत्र ! पाससे पास रहनेवाले आपको नमस्कार है। दूरसे दूर रहनेवाले आपको नमस्कार है । छोटेसे छोटे रूपवाले आपको नमस्कार है । बड़ेसे बड़े रूपवाले आपको नमस्कार है । बूढ़ेसे बूढ़े रूप आपको नमस्कार है । युवासे युवा रूप आपको नमस्कार है । सर्वरूपधारी आपको नमस्कार है इसके अंतमें शर्व नाम आपको नमस्कार है ॥ २९ ॥

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ॥
जनसुखकृते सत्वोत्पत्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥ ३० ॥

अन्वयः–(हे भगवन् !) विश्वोत्पत्तौ बहलरजसे भवाय नमो नमः । तत्संहारे प्रबलतमसे हराय नमो नमः । सत्वोत्पत्तौ जनसुखकृते मृड़ाय नमो नमः । प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥ ३० ॥

अर्थ–संसारकी उत्पत्तिसमय अधिक रजोगुणसहित भवरूप आपको नमस्कार है २ । उस (जगत्)के नाशके समय अत्यंततमो-

गुणसहित हररूप आपको नमस्कार है २। सत्वगुणकी उत्पत्तिके समय (अर्थात् जगत्के पालनसमय) भक्तजनोंके हितकरनेवाले मृड़रूप आपको नमस्कार है २। बड़े भारी तेजके स्थान और तीनों गुणोंसे परे कल्याणस्वरूप आपको नमस्कार है २— ॥३०॥

कृशपरिणतिचेतःक्लेशवश्यं क चेदं
क च तव गुणसीमोल्लंघिनी शश्वदृद्धिः ॥
इति चकितममंदीकृत्य मां भक्तिराधा-
द्वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥ ३१ ॥

अन्वयः—हे वरद! क्लेशवश्यं कृशपरिणति इदं चेतः क, च गुणसीमोल्लंघिनी तव शश्वत् ऋद्धिः क । इति चकितं मां भक्तिः अमंदीकृत्य ते चरणयोः वाक्यपुष्पोपहारं आधात् ॥३१॥

अर्थ—हे वरद! दुखी और अंतमें (रागद्वेषादिसे) दुर्बल (ऐसा मेरा) यह चित्त कहां? और गुणोंकी सीमासे पार जानेवाली आपकी सनातनकी महिमा कहां? (अर्थात् दोनोंमें बड़ा भेद है। मैं कदापि आपकी महिमाका वर्णन नहीं करसक्ता और वर्णन सो होनाही चाहिये) इसप्रकार (स्तुति करनेसे) घबरायेहुए मुझे भक्तिने उत्साहितकरके तुम्हारे चरणोंमें वाक्यरूपी पुष्पोंकी अंजली चढ़वा दी है ॥ ३१ ॥

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिंधुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ॥
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥ ३२ ॥

अन्वयः—हे ईश ! सिन्धुपात्रे असितगिरिसमं कज्जलं स्यात्, सुरतरुवरुशाखा लेखनी स्यात् (च) यदि शारदा उर्वीपत्रं गृहीत्वा सर्वकालं लिखति तदपि तव गुणानां पारं न याति ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे शिवजी ! समुद्ररूपी पात्रमें नीलपर्वतके बराबर काजल हो, कल्पवृक्षकी सुन्दरशाखारूपी लेखिनी हो और यदि सरस्वती (स्वयं) पृथ्वीरूपी पत्र लेकर सब कालतक लिखाही करै तोभी आपके गुणोंका पार न पा सकै (फिर भला मेरी क्या सामर्थ्य है) ॥ ३२ ॥

(उपसंहार तथा स्तोत्रमाहात्म्य)

असुरसुरमुनींद्रैरर्चितस्येंदुमौले-
र्ग्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ॥
सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदंताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥ ३३ ॥

अन्वयः—सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदंताभिधानः असुरसुरमुनीन्द्रैः अर्चितस्य इन्दुमौलेः ग्रथितगुणमहिम्नः निर्गुणस्य ईश्वरस्य एतत् रुचिरं स्तोत्रं अलघुवृत्तैः चकार ॥ ३३ ॥

अर्थ—संपूर्णगुणोंसे परमश्रेष्ठ पुष्पदंत (अचार्य)ने देवता दैत्य और बड़े २ मुनियोंसे पूजित, चन्द्रमाको ललाटपर धारण करनेवाले और जिन्होंके गुणोंकी महिमा विख्यात है ऐसे निर्गुणरूप शिवजीका यह सुन्दर स्तोत्र (शिखरिणी) बड़े २ छन्दोंमें बनाया ॥ ३३ ॥

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेत-
त्पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान्यः ॥

स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यः सदात्मा
प्रचुरतरधनायुःपुत्रवान्कीर्तिमांश्च ॥ ३४ ॥

अन्वयः—यः पुमान् शुद्धचित्तः (सन्) धूर्जटेः एतत् अनवद्यं स्तोत्रं अहरहः परमभक्त्या पठति, सः शिवलोके रुद्रतुल्यः, सदात्मा, प्रचुरतरधनायुःपुत्रवान् च कीर्तिमान् भवति ॥ ३४ ॥

अर्थ—जो मनुष्य शुद्धचित्त होकर शिवजीके इस सुन्दर स्तोत्रको नित्य परम भक्तिसे पढ़ता है वह शिवलोकमें शिवजीके समान, शुद्ध अंतःकरणवाला, बहुत धन और आयुवाला, पुत्रवान् तथा यशस्वी होता है ॥ ३४ ॥

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं होम यागादिकाः क्रियाः ॥
महिम्नःस्तवपाठस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥ ३५ ॥

अन्वयः—दीक्षा, दानं, तपः, तीर्थं, होम, यागादिकाः क्रियाः महिम्नःस्तवपाठस्य षोड़शीं कलां न अर्हन्ति ॥ ३५ ॥

अर्थ—दीक्षा, दान, तप, तीर्थ, होम, यज्ञ आदिकर्म, महिम्नस्तोत्रपाठके सोलहवें भागकी बराबरभी नहीं हो सक्ते ॥ ३५ ॥

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं शिवमीश्वरवर्णनम् ॥
अनौपम्यं मनोहारि पुण्यं गंधर्वभाषितम् ॥ ३६ ॥

अन्वयः—पुण्यं अनौपम्यं मनोहारि शिवं ईश्वरवर्णनं गंधर्वभाषितं इदं स्तोत्रं आसमाप्तम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—पवित्र, उपमारहित, मनहरन मंगलदायक,कल्याणकारी, शिवजीके वर्णनयुक्त गंधर्वराजसे कहागया यह (महिम्न) स्तोत्र समाप्त हुआ ॥ ३६ ॥

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ॥
अघोरान्नापरो मंत्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥ ३७॥

अन्वयः—महेशात् अपरः देवः न, महिम्नः अपरा स्तुतिः न, अघोरात् अपरः मंत्रः न, गुरोः परं तत्वं न अस्ति ॥ ३७ ॥

अर्थ—शिवजीके सिवाय दूसरा देव नहीं है, महिम्न स्तोत्रके सिवाय दूसरी स्तुति नहीं है, अघोरके सिवाय दूसरा मंत्र नहीं है और गुरुके सिवाय कोई तत्व नहीं है ॥ ३७ ॥

कुसुमदशननामा सर्वगंधर्वराजः
शशधरवरमौलेर्देवदेवस्य दासः ॥
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषा-
त्स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—शशधरवरमौलेः देवदेवस्य दासः सर्वगन्धर्वराजः स कुसुमदशननामा, खलु अस्य (शिवस्य) रोषात् एव निजमहिम्नः भ्रष्टः (सन्) दिव्यदिव्यं इदं महिम्नः स्तवनं अकार्षीत् ॥ ३८ ॥

अर्थ—सुन्दर मस्तकपर चन्द्रमाको धारणकरनेवाले देवोंके देव महादेवजीके दास, सब गंधर्वोंके राजा उस नाम पुष्पदंतने शिवजीके रोषके कारणही निश्चय अपनी महिमासे भ्रष्ट होकर परमदिव्य इस महिम्न स्तोत्रको बनाया ॥ ३८ ॥

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्रांजलिर्नान्यचेताः ॥
व्रजति शिवसमीपं किंनरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदंतप्रणीतम् ॥ ३९ ॥

अन्वयः–यदि मनुष्यः प्रांजलिः नान्यचेताः (सन्) सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं पुष्पदंतप्रणीतं अमोघं इदं स्तवनं पठति (तर्हि) किन्नरैः स्तूयमानः (सन्) शिवसमीपं व्रजति ॥ ३९ ॥

अर्थ–यदि मनुष्य हाथ जोड़कर एकाग्रचित्तसे बड़े २ देवता और मुनियोंसे पूजित, स्वर्गमोक्षके देनेवाले पुष्पदंतके रचेहुए फलदायक इस स्तोत्रका पाठ करता है (तो वह) किन्नरोंसे स्तुति कियागया शिवजीके पास जाता है ॥ ३९ ॥

श्रीपुष्पदंतमुखपंकजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्बिषहरेण हरप्रियेण ॥
कंठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥ ४० ॥

इति श्रीपुष्पदंतविरचितं शिवमहिम्नः स्तोत्रं संपूर्णम् ॥

अन्वयः–श्रीपुष्पदंतमुखपंकजनिर्गतेन किल्बिषहरेण हरप्रियेण स्तोत्रेण समाहितेन कंठस्थितेन पठितेन भूतपतिः महेशः सुप्रीणितः भवति ॥ ४० ॥

अर्थ–पुष्पदंताचार्यके मुखकमलसे निकलेहुए, पापहरनेवाले, शिवजीके प्यारे स्तोत्रका सावधान होकर कंठस्थ पाठ करनेसे भूतनाथ शिवजी बड़े प्रसन्न होते हैं ॥ ४० ॥ इति

आगरानिवासी पं० रामेश्वरभट्टकृत महिम्नस्तोत्रकी
भाषाटीका समाप्त हुई ।

अन्तिम प्रार्थना।

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छंकरपादयोः ॥
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ॥ १ ॥
तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर ॥
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः ॥ २ ॥
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं यः पठेन्नरः ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥ ३ ॥

यह वाणीरूपी पूजा हमने श्रीशंकरके चरणोंमें भेट करी है इससे देवोंके देव महादेवजी मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ १ ॥ हे महेश्वर ? मैं तुम्हारे भेदको नहीं जानताहूं कि तुम कैसे हो हे महादेवजी ? जैसे हो वैसेही आपको वार २ प्रणाम है ॥ २ ॥ जो मनुष्य एकसमय दोसमय और तीनसमय (इस स्तुतिको) पढ़ता है वह सब पापसे छूटकर शिवलोकको प्राप्त होता है ॥३॥